Journal
of the
Oriental Institute
M.S. University of Baroda
ISSN: 0030-5324
UGC CARE Group 1

जीवन यात्रा : जीवन के वास्तविक पड़ाव का मूल्यांकन

डॉ0 श्रुति सुधा आर्या
अतिथि प्रवक्ता, विधि विभाग,
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा

जीवन यात्रा, जीवन यात्रा के सोपान अथवा जीवन चलने का नाम जैसे शीर्षकों से जुड़े अनेक शोध–प्रबन्ध एवं शोध–पत्र सामने आ रहे हैं। इनमें अधिकांशतः जीवन की भौतिक समस्याओं के आंकलन–विवेचन के साथ–साथ जीवन में उस असीम सत्ता की उपस्थिति भी स्वीकार कर ली जाती है जिसे सर्वव्यापक व सर्वशक्तिमान परमेश्वर की संज्ञा दी जाती है। विचारणीय विषय यह है कि क्या जीवन यात्रा के पड़ावों को परखने की कोई अलग विधि भी है या फिर सामान्य ढर्रे पर चलने वाली शैली का पालन करते हुए ही हमारे कार्य में पूर्णता आ सकती है। जीवन यात्रा की कुछ विशिष्ट मान्यताएं हैं। शास्त्रोक्त दृष्टि से जीवन यात्रा के निम्नलिखित सोपान माने गये है– बाल्यावस्था, यौवनावस्था, प्रौढ़ावस्था एवं वृद्धावस्था। तदोपरान्त शून्य अर्थात् जीव का पञ्चभूतों में विलीन हो जाना। भारतीय चिन्तनधारा में जीवन पथ पर गतिशीलता के लिये 'पुरुषार्थ चतुष्टयी' की व्यवस्था भी की गई है। पुरुषार्थ की परिभाषा हमारे शास्त्रों में इस प्रकार से दी गई है "पुरुषः अथयते इति पुरुषार्थ" अर्थात् चौतन्य जीव अपना जीवन जीने के लिए जो लक्ष्य निर्धारित कर उसके लिए प्रयत्न करता है वही पुरुषार्थ है। ये पुरुषार्थ संख्या में चार माने गये हैं–1. धर्म, 2. अर्थ, 3. काम, 4. मोक्ष। चार पुरुषार्थ के साथ ही जीवन के चार आश्रमों का भी विधान किया गया है।[2] ये आश्रम है – 1. ब्रह्मचर्याश्रम, 2. गृहस्थाश्रम, 3. वानप्रस्थाश्रम, 4. संन्यासाश्रम । इन चारों आश्रमों तथा पुरुषार्थों को अन्तर्सम्बन्धित बनाया गया है।

- पहले आश्रम अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम में धर्म को प्रभावशाली पुरुषार्थ माना गया है। इसके अन्तर्गत अर्थ एवं कामादि से दूर रहने की सलाह दी जाती है एवं साथ ही नैतिक दायित्वों की अनुपालना पर विशेष बल दिया जाता है।

- दूसरे आश्रम अर्थात् गृहस्थाश्रम में धर्म के साथ–साथ अर्थ एवं काम को प्रधान पुरुषार्थ माना गया है। इस आश्रम में मनुष्य अपने गृह संचालन हेतु अर्थ प्राप्ति का प्रयास करता है। जीवन में काम वासना स्वाभाविक तथा मनोवैज्ञानिक होने के कारण गृहस्थाश्रम में काम भाव की तृप्ति का

ISSN: 0030-5324
UGC CARE Group 1

होना भी आवश्यक बताया गया है परन्तु अर्थ व काम दोनों का सीमित व संयमित उपभोग ही जीवन के लिए उपयोगी है क्योंकि जीवन यात्रा का वास्तविक पड़ाव श्मोक्षश अर्थात् जीवन मुक्ति है भोग नहीं ।

- तीसरे आश्रम अर्थात् वानप्रस्थाश्रम में धर्म और मोक्ष की प्रधानता रहती है। इस अवस्था में व्यक्ति सर्वोच्च लक्ष्य श्मोक्षश के लिए प्रयत्नशील रहता है।

- जीवन यात्रा के अन्तिम आश्रम अर्थात् संन्यासाश्रम में मनुष्य संन्यासावस्था में पहुँचकर मनुष्य मोक्ष के लिए पूर्णरूपेन उन्मुख हो जाता है। यही उसके जीवन का सर्वोच्च उद्देश्य है ।

किन्तु आज के इस भौतिकतावादी युग में विषैले भोज्य पदार्थों, विषैली वायु, दुर्घटनाओं, लाईलाज बिमारियों, कुकर्मों तथा अकाल मृत्यु के चलते वानप्रस्थाश्रम व संन्यासाश्रम तो शायद ही कोई पहुँच पाता है। आयु के द्वारा यदि कोई इस अवस्था तक पहुँच भी जाता है तो आचरण के द्वारा वह अन्तिम अवस्था में भी गृहस्थाश्रम के सुखों अर्थात् अर्थ एवं काम में ही ग्रस्त रहता है। वह सांसारिक रिश्तों के मोह से तथा गृहस्थ के बन्धनों से मुक्त ही नहीं होना चाहता। अपने जीवन के अमूल्य क्षण वह उन रिश्तों में उलझकर गंवा देता है जिन्हें वह साथ नहीं ले जा सकता। ये सब रिश्ते तो शरीर के साथ ही समाप्त हो जाते हैं। आत्मा तो अजन्मा है, नित्य है, शाश्वत है, पुरातन है। शरीर के नष्ट हो जाने पर भी वह मरती नहीं है।

न जायते म्रियते वा कदाचिन् नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणों न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।[3]

जब मनुष्य पैदा होता है तो न जाने पीछे किसे रोता बिलखता छोड़ कर आता है। वह किसी का पिता रहा होगा, किसी का पुत्र, किसी का भाई तथा किसी का बन्धु । इसी तरह से समाज में नाम व पैसा तब भी कमाया ही होगा। अगर प्रौढ़ावस्था में ही मृत्यु हो गई होगी तो सारा जीवन उसके पिछले माता–पिता, पत्नी व बच्चे उसके लिए बिलखते रहे होंगे लेकिन उसे तो कुछ भी याद नहीं। फिर कैसे रिश्ते? कैसी सांसारिकता? उसने किसके लिए अपनी जीवन यात्रा का सबसे महत्त्वपूर्ण पड़ाव त्याग दिया? वह क्यों गृहस्थाश्रम से आगे वानप्रस्थाश्रम में कदम नहीं रख सका? हो सकता है आज व्यापार में जिनसे उसका सबसे अधिक द्वन्द्व है, मनमुटाव है कल उसी परिवार में ही उसका जन्म हो जाये तथा सारा जीवन वह अपने ही जोड़े धन व प्रतिष्ठा को अपने प्रतिद्वन्द्वी के धन व प्रतिष्ठा समझकर जलता–भुनता रहे।

ISSN: 0030-5324
UGC CARE Group 1

जब तक मनुष्य अपने इस मूल उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक वह तृप्त नहीं हो सकता। वह कुछ भी कर ले, कुछ भी पा ले मगर अन्दर से फिर भी एक प्यास बनी ही रहती है। एक अनजाने खालीपन को वह हर समय महसूस करता है । इस अन्दर की आवाज को वह क्लब तथा रेस्तरां के शोर में दबाना चाहता है किन्तु असफल रहता है क्योंकि परमात्मा ने यह सुन्दर देह इसीलिए प्रदान की है ताकि वह अन्य जीवधारियों से अलग को मनुष्य जीवन के रास्ते पर गतिशील होते हुए अपनी वास्तविक मन्जिल पर पहुँच सके आवश्यकता इस बात की है कि इन्सान उस ब्रह्माण्ड को पहचान सके, आवश्यकता तो इस बात की है कि उस पथ पर गतिशील हो सके जो पथ ब्रह्माण्ड की ओर जाता है, जो पथ सहस्रार की ओर जाता है तथा जो पथ पूर्णता की ओर जाता है। मगर वह कौन सा रास्ता है, वह कौन सा पथ है और किस तरीके से मनुष्य अपने जीवन के उस असतो पड़ाव पर पहुँच सकता है?[4]

समय–समय पर कबीर इत्यादि अनेक सन्त कवियों, दार्शनिको तथा धर्म गुरुओं के द्वारा हमें कुण्डलिनी शक्ति का ज्ञान दिया जाता रहा है। उन्होंने बताया है कि हमारे साधारण से दिखने वाले शरीर के अन्दर सात चक्र विद्यमान हैं, जिन्हे कुण्डलिनी शक्ति का नाम दिया गया है। इन सातों चक्रों को जागृत करना ही मनुष्य के जीवन का उच्चतम ध्येय है। इन्हीं चक्रों को जागृत करते हुए हम उस पथ पर गतिशील हो सकते हैं जिसे शास्त्रों में श्मृत्र्योमाऽमृतम् गमयश अर्थात् मृत्यु से अमृत की ओर अर्थात् अमृत्यु की ओर गमन कहा गया है। इन श्रेष्ठ ऋषियों–मुनियों तथा गुरुओं के द्वारा बताये इन सातों चक्रों के विषय में निम्न प्रकार से समझा जा सकता है[5]

चक्र	तत्त्व	बीज मन्त्र	आत्मावास्था
मूलाधार चक्र	पृथ्वी	लं	भू
स्वाधिष्ठान चक्र	जल	वं	भुवः
मणिपुर चक्र	अग्नि	रं	स्वः
अनाहत चक्र	वायु	यं	महः
विशुद्ध चक्र	आकाश	हं	जनः
आज्ञा चक्र	दिव्य शक्तियां	नं	त्पः
सहस्रार	गुरु ब्रह्म	ऊँ	सत्यम्

ISSN: 0030-5324
UGC CARE Group 1

नारायण के संरक्षण में ही पूर्ण मुक्ति अर्थात् मोक्ष व परम आनन्द की प्राप्ति होती है। भारतीय हिन्दू परम्परा के अन्तर्गत मुक्ति की पाँच अवस्थाएं हैं[6]–1. सालोक्य, 2. सामीप्य, 3. सारूपय, 4. सायुज्य, 5. सार्ष्टि

- सालोक्य के अन्तर्गत इष्ट के लोक में रहने को ही मुक्ति माना गया है।
- सामिप्य के अन्तर्गत इष्ट लोक के आसपास विचरण करना ही मुक्ति माना गया है।
- सारूपय के अन्तर्गत इष्ट के समान रूप तथा हाव–भाव का होना ही मुक्तिश माना गया है। जैसे उद्धव जी का श्रीकृष्ण के समान दिखाई देना ।
- सायुज्य के अन्तर्गत इष्ट के एकाकार अर्थात् द्वैत का भाव समाप्त होने को ही मुक्ति माना गया है तथा इस स्थिति को श्अहं ब्रह्मस्मिश की स्थिति कहा गया है ।
- सृष्टि के अन्तर्गत भगवान जैसे ऐश्वर्य को प्राप्त करना ही मुक्ति माना गया है ।

'आदिगुरु शंकराचार्य जीश ने श्विवेकचूड़ामणिश के अन्तर्गत बताया है कि संसार में प्रत्येक वस्तु सुलभ है किन्तु तीन चीजें अत्यन्त दुर्लभ हैं– 1. नर तन (मनुष्य योनि की प्राप्ति) 2. मोक्ष की अभिलाषा, 3. सद्गुरु की प्राप्ति ।

मानव देह दुर्लभ होते हुए भी अधिकतर मनुष्य इसे पशु जीवन की तरह खो देते हैं। वे बुद्धि का उपयोग कर अपनी जीवन यात्रा के वास्तविक पड़ाव (मोक्ष) की ओर ध्यान ही केन्द्रित नहीं करते। इसीलिए शंकराचार्य जी ने मोक्ष की अभिलाषा को संसार की दूसरी दुर्लभ वस्तु माना है। तदोपरान्त संसार में तीसरी अत्यन्त दुर्लभ चीज शंकराचार्य जी ने सद्गुरु की प्राप्ति माना है। ऐसे गुरु जिनके लिए गुरु गीता में स्पष्ट रूप से लिखा है कि–

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरु देवो महेश्वरः
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः[7]

स्पष्ट है कि मोक्ष का मूल सद्गुरु की कृपा में ही समाहित है । जहाँ सद्गुरु के 'सद्' कर अर्थ सच्चा एवं सही है वहीं 'गुरु' के 'गु' से अभिप्राय अंधकार से है तथा 'रु' से अभिप्रायः 'प्रकाश' से है। कहने का भाव यह है कि "वह सच्चा व सही व्यक्तित्व जो मानव मात्र के जीवन से अज्ञानान्धकार को कर उसे ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित कर दे उसे सद्गुरु कहा जाता है।"

सद्गुरु स्वयं पूर्ण होते हैं इसीलिए वे प्राणी मात्र को भी पूर्णता देने में सक्षम होते हैं। वे प्रकाश पुंज होते हैं इसीलिए दूसरों के जीवन पथ को भी आलोकित कर सकते हैं। वे अनन्त होते हैं

ISSN: 0030-5324
UGC CARE Group 1

इसीलिए वे किसी भी मनुष्य को सीमित से असीमित में मिलाने के लिए पूर्णतः सक्षम होते हैं। आवश्यकता है अभिलाषा की। मोक्ष की अभिलाषा की। तत्परता की तथा मानसिक तैयारी की ।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि जीवन यात्रा असीम है। मनुष्य जीवन में लालसा एवं जिजीविषाएं अनन्त हैं। ज्यों–ज्यों जीवन के भोगों को मनुष्य भोगता जाता है वह उनमें और ज्यादा लिप्त होता जाता है। वह भूल जाता है कि उसे कहाँ जाना है? उसकी मन्जिल कौन सी है? जिस प्रकार से पैण्डुलम हिलता भर है लेकिन पहुँचता कहीं नहीं है उसी प्रकार से मनुष्य जीवन यात्रा में जाता बहुत जगह है किन्तु पहुँचता कहीं नहीं है क्योंकि जीवन यात्रा पर चलते हुए मनुष्य ने मोक्ष की अभिलाषा नहीं की। मोक्ष ही एकमात्र ऐसी मन्जिल है जहाँ पहुँच कर उसके भौतिक व आध्यात्मिक जीवन में एक सन्तुलन आ सकता है। जहाँ पहुँच कर वह भक्त के स्थान पर भगवान बन जाता है। वह अहं ब्रह्मास्मि की स्थिति को प्राप्त करता हुआ परम सत्ता से एकाकार कर लेता है। वह जीवन के किसी भी पुरुषार्थ का निर्वाह क्यों न कर रहा हो तथा जीवन के किसी भी आश्रम में क्यों न रह रहा हो, उसका वास्तविक ध्येय तथा जीवन यात्रा का वास्तविक पड़ाव मोक्ष ही है तथा मोक्ष ही रहेगा ।

सन्दर्भ :

1. डॉ. अशोक आर्य, वैदिक सोलह संस्कार–एक विवेचन, पृष्ठ 8, आर्य प्रकाशन, नई दिल्ली
2. वही, पृ. 75
3. श्रीमद्भागवद्गीता, पृष्ठ 83, संकलन–सत्यव्रत सिद्धांतालंकार, विजयकृष्ण लखनपाल प्रकाशन, नई दिल्ली
4. डॉ. नारायण दत्त श्रीमाली, पृष्ठ 83, मंत्र–तंत्र–यंत्र विज्ञान प्रकाशन, जोधपुर
5. डॉ. नारायण दत्त श्रीमाली, स्वर्णिम साधना सूत्र, पृष्ठ 63, प्रकाशक वही
6. श्री ए. सी. भक्तिवेदांत स्वामी प्रभुपाद, पृष्ठ 45, भक्तिसामृतसिंधुः अंतरराष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ
7. डॉ. नारायण दत्त श्रीमाली,श्लोक सं. 80, गुरु गीता, मंत्र – तंत्र – यंत्र विज्ञान प्रकाशन, जोधपुर